August 2012 IJRSS Volume 2, Issue 3 ISSN: 2249-2496

शीत युद्ध के बाद आंतरिक सामरिक संबंध में सहयोग के लिए नया दृष्टिकोण

डॉ पप्पू राम कोली व्याख्याता
राजनीति वज्ञान राजकीय स्नातकोत्तर महा वधालय
सवाई माधोपुर राजस्थान

सारांश

यह लेख शीत युद्ध के बाद के घटनाक्रमों और उस युग में उभरती विश्व व्यवस्था पर एक विश्लेषणात्मक चर्चा प्रदान करता है। इस संबंध में, अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली की कुछ मुख्य विशेषताओं, बुनियादी प्रवृत्तियों और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में नए खतरों को उसी क्रम में संबोधित किया जाता है। यह तर्क दिया जाता है कि शीत युद्ध के बाद के युग में पारंपरिक अंतर–राज्य युद्धों में कमी आई है, राष्ट्र–राज्यों के पूर्ण नियंत्रण से परे अंतर्राष्ट्रीय शांति के लिए कई अन्य गंभीर खतरे हैं, विशेष रूप से जातीय संघर्ष, धार्मिक उग्रवाद, आतंकवाद, उत्तर –दक्षिण संघर्ष, और अनुचित आर्थिक प्रतिस्पर्धा। दुनिया का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि प्रमुख शक्तियां इन खतरों पर सहयोगी तरीके से काम करने में सक्षम हैं या नहीं।

मुख्य शब्द

शीत युद्ध, अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली, अंतर्राष्ट्रीय रुझान

परिचय

1990 के दशक की शुरुआत में शीत युद्ध की समाप्ति का अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर दोहरा प्रभाव पड़ा है। एक ओर, पूर्वी यूरोप और तीसरी दुनिया से सोवियत सेना की वापसी ने शीत युद्ध को समाप्त कर दिया, पहले मार्क्सवादी तानाशाही वाले कई राज्यों में लोकतंत्रीकरण को आगे बढ़ने की अनुमति दी, और कई तीसरी दुनिया के संघर्षों को हल करने में महत्वपूर्ण प्रगति हुई शीत युद्ध के दौरान लंबे हो जाते हैं। पूर्व–पश्चिम तनाव में कमी के परिणामस्वरूप अंतर्राज्यीय संघर्षों में भी भारी कमी आई, जिनमें से कुछ शीत युद्ध के दौरान महाशक्ति वैचारिक प्रतिद्वंद्विता के कारण हुए। यहां तक कि यह तर्क देना भी फैशन बन गया था कि यहां सैन्य शक्ति के रूप में इस्तेमाल किया गया बल अंतरराष्ट्रीय राजनीति में अपनी चाल चल रहा है।

दूसरी ओर, हालांकि, यह तर्क देना नासमझी होगी कि दुनिया अब शांति में है। ष्सोवियत साम्राज्यष के पतन के बाद कई क्षेत्रों में कई गंभीर संघर्षों का उद्भव, या फिर से उदय हुआ, जो शीत युद्ध के दौरान अपेक्षाकृ

त शांत थे। इनमें से कुछ नए संघर्ष पूर्व सोवियत संघ के भीतर होते रहे हैं, जैसे नागोर्नो–काराबाख को लेकर आर्मेनिया और अजरबैजान के बीच युद्ध ओर चेचन्या में लड़ाई। लेकिन इसके बाहर के कई देशों में कुछ संघर्ष भी भड़क उठे या तेज हो गए और तीसरी दुनिया के कई संघर्ष जिनमें शीत युद्ध के दौरान महाशक्तियां गहराई से शामिल नहीं थीं, इसके बाद भी बनी रहीं, जैसे भारत, श्रीलंका और सूडान में अलगाववादी आंदोलन।

नृजातीय–राजनीतिक संघर्षों के अलावा, अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के लिए अन्य खतरे भी हैं जो वास्तव में प्रमुख शक्तियों, यहां तक कि शीत युद्ध के विजेता संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्ण नियंत्रण से परे हैं। सबसे उल्लेखनीय लोगों में धार्मिक उग्रवाद, आतंकवाद, उत्तर–दक्षिण संघर्ष और दुर्लभ संसाधनों पर गंभीर प्रतिस्पर्धा शामिल है। इस प्रकार, शीत युद्ध की समाप्ति को अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में स्थिरता और अस्थिरता दोनों लाने वाला कहा जा सकता है। इस लेख का उद्देश्य स्थिरता और अस्थिरता के तत्वों के संदर्भ में शीत युद्ध के बाद के युग के लगभग दो दशकों का मूल्यांकन करना है। इस संबंध में, अध्ययन अंतरराष्ट्रीय प्रणाली की सामान्य विशेषताओं के एक सिंहावलोकन के साथ शुरू होगा। इसके बाद अंतरराष्ट्रीय संबंधों में बुनियादी रुझानों और नए खतरों पर अधिक विस्तृत चर्चा होगी। अंतर्राष्ट्रीय मामलों की संभावित भविष्य की दिशाओं के संबंध में अध्ययन के समापन में कई टिप्पणियों को भी रेखांकित किया जाएगा।

पूर्वी यूरोप में साम्यवादी शासनों के पतन और सोवियत संघ के विघटन के साथ, शीत युद्ध की अवधि पर हावी होने वाली द्विध्रुवीय अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली गायब हो गई, जो मूल रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में एक एकध्रुवीय प्रणाली के लिए अपनी जगह छोड़ रही थी, विशेष रूप से सैन्यध्राजनीतिक दृष्टिकोण। संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्व प्रतिद्वंद्वियों, विशेष रूप से सोवियत संघ और चीन, या ता ध्वस्त हो गए हैं या उनकी विचारधाराओं की केंद्रीय विशेषताओं को हटा दिया गया है जो संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति शत्रुतापूर्ण थे। अन्य देशों ने अमेरिकी सैन्य सुरक्षा की ओर रुख किया है। अमेरिकी साम्राज्य को सामान्य रूप से फारस की खाड़ी, इराक और मध्य पूर्व में सबसे अच्छा काम करते हुए देखा जा सकता है, जहां संयुक्त राज्य की सशस्त्र सेना ने एक अर्ध स्थायी तलहटी स्थापित की है और ठिकानों पर तैनात हजारों सैनिक ईरान पर नजर रखते हैं, सीरिया, और अन्य संभावित दुश्मन।

जापान में अमेरिकी सैन्य शक्ति केवल जापान को विदेशो दुश्मनों से बचाती है। यह अप्रत्यक्ष रूप से चीन और अन्य एशियाई देशों को उन परिणामों से बचाता है जो भारी हथियारों से लैस जापान से हो सकते हैं। इसके अलावा, अमेरिकी सैन्य शक्ति सैन्य गठबंधन के एक आयोजक के रूप में कार्य करती है, दोनों स्थायी (जैसे नाटो) और तदर्थ (जैसे शांति मिशन)। गठबंधन संचालन के आदेश और नियंत्रण के लिए अमेरिकी

सैन्य भागीदारी अक्सर आवश्यक होती है। जब अमेरिकी नेतृत्व करने के लिए तैयार होते हैं, तो अन्य देश अनिच्छा से भी अक्सर उनका अनुसरण करते हैं। हालाँकि, ये निश्चित रूप से बहस करने के लिए नहीं हैं कि दुनिया भर में हर बड़े संघर्ष में अमेरिकी हस्तक्षेप होता है। लेकिन इसका मतलब यह है कि अपनी सीमाओं से परे बल प्रयोग करने वाले लगभग किसी भी देश को संयुक्त राज्य अमेरिका की संभावित प्रतिक्रियाओं के बारे में सोचना होगा।

दूसरी ओर, आर्थिकध्राजनीतिक दृष्टिकोण से, अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली को एकध्रुवीय के बजाय बहुध्रुवीय कहा जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका निश्चित रूप से एक बड़ी आर्थिक शक्ति है, लेकिन यह एकमात्र शक्ति नहीं है। अन्य शक्ति केंद्र हैं, विशेष रूप से, यूरोपीय संघ, एशिया–प्रशांत आर्थिक सहयाग संगठन, साथ ही इन एकीकरणों या संगठनों के बाहर कई राष्ट्र–राज्य हैं। वास्तव में, जब संयुक्त राज्य अमेरिका ने कुवैत, अफगानिस्तान, इराक और अन्य जगहों पर दुनिया को षस्थिरष करने के लिए सैन्य अभियान चलाए, तो उसने संचालन की लागत को अन्य प्रमुख शक्तियों या संबंधित देशों के साथ साझा करने पर जोर दिया। इस प्रकार, शीत युद्ध के बाद के युग की अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली वास्तव में एकध्रुवीय और बहुध्रुवीय प्रणाली दोनों के मिश्रण को दर्शाती है जिसमें कम से कम पाँच प्रमुख शक्तियाँ, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप, चीन, जापान और रूस अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर हावी हैं।

भारत ने जिस श्शासी छविश को पेश करने की मांग की है, वह अंतरराष्ट्रीय संबंधों का विषय होने की इस अवधारणा पर आधारित थी। भारत ने तर्क दिया कि महान शक्तियों के वर्चस्व वाली यथास्थितिवादी विश्व व्यवस्था में, वैश्विक निर्णय लेने की प्रक्रिया में भारत की कोई आवाज नहीं थी।

शीत युद्ध के बाद आंतरिक सामरिक संबंध में सहयोग के लिए नया दृष्टिकोण

एक शासी छवि अनिवार्य रूप से एक राष्ट्र या राष्ट्रों के समूह द्वारा उनके पारस्परिक संबंधों में स्थिरता का एक पैटर्न स्थापित करने के लिए आयोजित एक धारणा है। यह राष्ट्र–राज्य की रणनीतिक दृष्टि को प्रस्तुत करना चाहता है, एक ऐसी दृष्टि जो अपनी राष्ट्रीय पहचान की खोज और अंतिम अभिव्यक्ति के माध्यम से विकसित होती है। स्वतंत्रता, आंतरिक सुरक्षा और क्षेत्रीय अखंडता हमेशा भारत के सामरिक दृष्टिकोण में प्राथमिकताआ पर हावी रही है। ये, शांति के दृष्टिकोण के साथ, भारतीय स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों के दौरान भारत की नीतियों की शासी छवि का गठन किया। 1970 के दशक में दक्षिण एशियाई क्षेत्रवाद की ओर बदलाव होने तक ये नीतियां अधिकांश नेहरू वर्षों और उसके बाद भो वैध बनी रहीं। फिर भी, दृ

ष्टिकोण के प्रमुख सिद्धांत भारतीय सोच पर हावी रहे, चाहे वह महाशक्तियों, परमाणु मुद्दों, पड़ोसियों, आदि के प्रति नीति हो। आज, एक ऐसे युग में जो परा–राष्ट्रवाद का दावा करता है, भारत शांति और स्वतंत्र समझ के मूल सिद्धांतों को फिर से स्थापित करना जारी रखता है। विश्व मामलों के अपने विश्वदृष्टि की कुंजी के रूप में।

पारंपरिक शांति दृष्टिकोण के विपरीत कुछ परिस्थितियों में बल के उपयोग की वैधता का मुद्दा भारत में बहस का विषय रहा है। एक स्तर पर, भारत अंतरराष्ट्रीय स्थिति को राज्यों के एक समाज के ढांचे में परिभाषित करता है और अराजक नहीं है, इसलिए अंतरराष्ट्रीय संबंधों में व्यवस्था प्राप्त करने के लिए यथास्थितिवादी शक्ति संतुलन के खिलाफ संघर्ष समाधान के पक्ष में बहस करता है। वैश्विक स्थिति शक्ति के दृष्टिकोण को अस्वीकार करती है और विकास पर आधारित शांति की संरचना के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय शासन की मांग करती है। दूसरे स्तर पर यह क्षेत्रीय स्तर पर बल की उपयोगिता को स्वीकार करता है जहाँ यह क्षेत्रीय राज्य व्यवस्था में भारतीय भूमिका को परिभाषित करता है और मानता है कि श्आदेशश श्रेणीबद्ध शक्ति संरचनाओं का एक उत्पाद है।

सुरक्षा के लिए भारतीय दृष्टिकोण की जड़ें इसकी विकास नीतियों में निहित हैं, एक दृष्टिकोण जिसे विकास (और कूटनीति) के माध्यम से रक्षा के रूप में परिभाषित किया गया है, और इस प्रकार मौजूदा विश्व व्यवस्था में परिवर्तन की संभावना को मानता है और मांग करता है जिसे यथास्थितिवादी माना जाता है। भारतीय विदेश नीति पारंपरिक रूप से प्रकृति में संशोधनवादी रही है। इसे विभिन्न क्षेत्रों में देखा जा सकता हैरू आर्थिक क्षेत्र में इसे एक नई आर्थिक व्यवस्था की मांग के रूप में व्यक्त किया गया था, राजनीतिक क्षेत्र में इसे राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों के समर्थन में और अंततः गुटनिरपेक्षता में, सामाजिक क्षेत्र में अभिव्यक्ति मिली। सामाजिक न्याय की मांग और सुरक्षा के क्षेत्र में परिलक्षित यह एक उद्दंड परमाणु और अंतरिक्ष नीति के क्षेत्र में प्रदर्शित किया गया था जिसने स्वदेशी परमाणु आर अंतरिक्ष विशेषज्ञता विकसित करने के लिए अप्रसार और प्रौद्योगिकी इनकार व्यवस्थाओं को खारिज कर दिया था। हालाँकि, एक युग में क्लासिक संशोधनवादी स्थिति की सीमाओं के बारे में एक बढ़ती हुई समझ है जब भारत विश्व मामलों में एक प्रमुख खिलाड़ी के रूप में उभर रहा है।

अधिकांश अन्य देशों की तरह, भारतीय सामरिक सोच, राजनीतिक की प्रधानता के आधार पर टिकी हुई है। अंतिम रूप देने के अपने अंतिम क्रम में सुरक्षा पर प्रमुख निर्णय अनिवार्य रूप से राजनीतिक निर्णय होते हैं और सैन्य पसंद पर आधारित नहीं होते हैं। इसके अलावा, भारतीय सुरक्षा सोच की लंबे समय से अमूर्त

होने के लिए आलोचना की गई है, ठोस नहीं। स्पष्ट रणनीतिक सिद्धांत प्रस्तुत करने और नीति के संदर्भ में इसे स्पष्ट करने के लिए भारत की ओर से एक स्पष्ट अनिच्छा रही है।

एक शीत युद्ध में तीन आवश्यक विशेषताएं शामिल होतो हैंरू पहला, अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली में दो अच्छी तरह से मेल खाने वाले बिजली के खंभे होने चाहिएय असंतुलित बिजली के खंभे या दो से अधिक बिजली के खंभे शीत युद्ध को जन्म देना मुश्किल है। दूसरा, दो प्रमुख बिजली के खंभे मुख्य रूप से प्रतिस्पर्धी होने चाहिए, भागीदार नहीं। विशेष रूप से, प्रतिस्पर्धी संबंध गठजोड़, आपसी सैन्य प्रतिरोध और हथियारों की होड़, आर्थिक बंद और अलगाव, और वैचारिक हमलों के माध्यम से राजनयिक टकराव में परिलक्षित होना चाहिए। तीसरा, दो ध्रुवीय शक्तियों के बीच प्रत्यक्ष सैन्य संघर्ष नहीं होना चाहिए। शीत युद्ध में संघर्ष का एक सामान्य रूप छद्म युद्ध है, जो दो ध्रुवीय शक्तियों के बीच प्रतिस्पर्धा का मुख्य रूप है। ये तीन बुनियादी विशेषताएं, जिनमें पहली शक्ति संरचना का वर्णन करती है और अन्य दो ध्रुवीय संबंधों की स्थिति का वर्णन करती हैं, ने यूएस–सोवियत टकराव के बीच अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली की बुनियादी विशेषताओं का गठन किया।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका और सोवियत संघ के बीच लंबे समय तक चलने वाले शीत युद्ध ने वैश्विक राजनीतिक, आर्थिक और वैचारिक प्रतिमानों को गहराई से आकार दिया। द्वितीय विश्व युद्ध में दोनों देश फासीवाद–विरोधी महत्वपूर्ण सहयोगी थे, लेकिन युद्ध की समाप्ति के ठीक बाद वे शीघ्र ही शीत युद्ध की खाई में गिर गए। यह तीव्र और नाटकीय परिवर्तन विचारोत्तेजक है। शीत युद्ध की शुरुआत के कई कारण थे।

सबसे पहले, यूएस–सोवियत रणनीतिक अविश्वास में एक ऊपर की ओर सर्पिल था जब दोनों देशों के पास मजबूत विनाशकारी सैन्य बल थे। सामरिक अविश्वास एक प्रकार की राजनीतिक भावना थी जो उनके सामान्य शत्रु के गायब होने के बाद उत्पन्न होने की संभावना थी। यह प्रवृत्ति राजनीति विज्ञान के सामान्य नियम के अनुरूप है, क्योंकि सुरक्षा दबाव से उत्पन्न महान भय मानव स्वभाव में संवेदनशीलता और संदेह उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त है। अमेरिका और सोवियत संघ के परस्पर शत्रु जर्मनी की हार के बाद दोनों राष्ट्रों की महाशक्ति शक्ति के संरक्षण ने नया भय पैदा किया। ट्रूमैन, नए अमेरिकी राष्ट्रपति और स्टालिन, सोवियत संघ के वृद्ध नेता, ने एक दूसरे के साथ संवाद जारी रखने के लिए आत्मविश्वास और धैर्य खो दिया। पॉट्सडैम सम्मेलन के बाद दोनों शीर्ष नेता फिर कभी नहीं मिले। दोनों पक्षों के निर्णय निर्माताओं के भौतिक अलगाव ने आपसी अविश्वास को कम करन में योगदान दिया।

दो शक्तिशाली शिविरों के बीच टकराव में यूएस–सोवियत टकराव के विकास ने शीत युद्ध के पैमाने को और बढा दिया। अमेरिका ने उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन (छ।ज्व्) की स्थापना का बीड़ा उठाया, जबकि सोवियत संघ ने प्रतिक्रिया में वारसा संधि संगठन की स्थापना की। यूएस–सोवियत टकराव नाटो और वारसॉ संधि संगठन के बीच एक में विकसित हुआ। इस तरह के भारी संरचनात्मक दबाव के तहत, गठबंधन के सदस्यों ने जानबूझकर या अनजाने में राजनीति, अर्थशास्त्र और विचारधारा जैसे क्षेत्रों में पक्ष लेकर संघर्ष की जरूरतों को स्वीकार किया और शायद ही कोई तीसरा विकल्प था। इस विरोधी समूह संरचना को बदलने की कोशिश करने वाले किसी भी सदस्य को बड़े जोखिम का सामना करना पड़ा। यहां तक कि अगर दो प्रमुख देश अपने संबंधों को आसान बनाने का इरादा रखते हैं, तो उनके पीछे सहयोगी दलों के हितों के कारण दुर्जेय परिणाम होंगे।

इसके अलावा, चीन और अमेरिका सैन्य खर्च के मामले में दुनिया के शीर्ष दा देशों के रूप में सऊदी अरब से आगे हैं, जो तीसरे स्थान पर है। बेशक, चीन, जो सैन्य ताकत में अमेरिका से बहुत कमजोर है, आम तौर पर अमेरिका को सैन्य रूप से चुनौती देने में सक्षम होने से बहुत दूर है। विचारधारा और मूल्य प्रणाली में दोनों पक्षों के बीच स्पष्ट मतभेद भी बढ़ रहे हैं। चीन प्राचीन काल से ही एक अनूठी सभ्यता रही है। जब से चीन की कम्युनिस्ट पार्टी सत्ता में आई है, चीन ने अपनी पारंपरिक संस्कृति को विचारधारा और मूल्य प्रणाली के मामले में मार्क्सवाद के साथ जोड़ दिया है। चीन और अमेरिका के बीच विचारों और मूल्यों में अंतर एक बार दबा दिया गया था और कार्यात्मक जरूरतों से अधिक हो गया था, क्योंकि इसके सुधार और खुलेपन के बाद से चीन का मुख्य दृष्टिकोण आधुनिक बाजार अर्थव्यवस्था के रीति–रिवाजों का बड़े पैमाने पर अवशोषण था।

विचार विमर्श

संक्षेप मे, चीन और अमेरिका आज के अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में दो सबसे महत्वपूर्ण भूमिकाओं पर काबिज हैं, जबकि यूरोप, जापान और रूस जैसे पारंपरिक खिलाड़ियों ने अपनी रणनीतिक स्थिति में अपेक्षाकृत गिरावट देखी है। चीन–अमेरिका संबंध अब पहली बार संपूर्ण अंतरराष्ट्रीय प्रणाली की प्रकृति को परिभाषित करते हैं। हालाँकि, दो शक्ति ध्रुवों के बीच काफी असंतुलन, अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली की शक्ति संरचना की सबसे स्पष्ट विशेषता है।

यूएस–केंद्रित गठबंधन और चीन द्वारा बुनी जा रही मजबूत साझेदारी नेटवर्क के बीच एक संभावित कूटनीतिक टकराव पैदा हो गया है, हालांकि दोनों समूह विपरीत नहीं हैं। दक्षिण चीन सागर के मुद्दे पर, दोनों देश सैन्य संघर्ष की प्रारंभिक स्थिति में हैं, मौखिक हमलों में उलझे हुए हैं और प्रासंगिक समुद्री नेविगेशन मुद्दों पर महत्वपूर्ण सैन्य टकराव हैं।

भाग में, यह अनिश्चितता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि बहुपक्षवाद के प्रति अमेरिकी प्रतिबद्धता संयुक्त राज्य अमेरिका की अपनी शक्ति पर एक स्वैच्छिक आत्म–संयम है। या तो देशों के एक समूह के बीच सबसे शक्तिशाली राज्य के रूप में (जैसे शीत युद्ध में) या पूरी व्यवस्था के भीतर सबसे शक्तिशाली राज्य के रूप में (जैसा कि शीत युद्ध के बाद में), सच्चाई यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने बहुपक्षीय निवेश में निवेश किया है सिस्टम अपनी पसंद से और अकेले अपनी पसंद से। वह चुनाव रणनीतिक था। अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों और मानदंडों के समर्थन को अमेरिकी हितों को आगे बढ़ाने के लिए माना गया। प्रबुद्ध स्व–हित की भावना के बाद, बहुपक्षीय आदेश के लिए अमेरिकी समर्थन ने कुछ नीतिगत स्वायत्तता का त्याग किया, लेकिन ष्सहयोग के लिए कार्यात्मक मांगों, आधिपत्य शक्ति प्रबंधन (विशेष रूप से अमेरिकी शक्ति प्रभुत्व की वैधता), औरष् अमेरिकी कानूनी–संस्थागत ष्के प्रक्षेपण की सुविधा दी। राजनीतिक परंपरा "दुनिया में बाहर। संयुक्त राज्य अमेरिका, कलन चला गया, जितना दिया उससे अधिक मिला।

सामरिक संयम के एक उपाय का प्रयोग करके – कुछ मूल नियमों के लिए सम्मान (सबसे महत्वपूर्ण, बल के उपयोग पर संयम) – संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य राष्ट्रों ने एक बहुपक्षीय आदेश के पश्चिम से परे विस्तार के लिए जगह खोली जिसमें सहयोग फल–फूल सकता था। अभिसरण सिद्धांत और अमेरिकी सैन्य प्रभुत्व में विश्वास द्वारा परिभाषित समय में, यह मान लेना आसान था – विशेष रूप से पश्चिम में – कि महान–शक्ति प्रतिद्वंद्विता अप्रचलित थी। राज्य लक्ष्यों के समान सेट की ओर बढ़ रहे थे।

पारंपरिक सुरक्षा सरोकारों के मेज से दूर प्रतीत होने के साथ, सामान्य उद्देश्यों और साझा खतरों को प्राथमिकता दी जा सकती है। लेकिन अगर उन अंतर्निहित नियमों को तोड़ दिया गया, और सहयोग में विश्वास को कम कर दिया गया, तो राष्ट्रों के पास संभावित खतरों के खिलाफ बचाव करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा, सुरक्षा की मूलभूत भावना को कम करने के लिए जिसने अधिक सहकारी आदेश को कार्य करने में सक्षम बनाया। दुर्भाग्य से, यह बहुत पहले नहीं था जब उन नियमों को कई दिशाओं से मिटाया जा रहा था।

निस्संदेह, अमेरिका का बहुपक्षीय नियमों और संस्थागत प्रक्रियाओं का पालन बिल्कुल सही नहीं था। एकध्रुवीय क्षण में बाहरी बाधाओं के अभाव में, वाशिंगटन के पास संयम के वादे का पालन करने के लिए सबसे कम प्रोत्साहन था। फिर भी, यह याद रखने योग्य है कि बहुपक्षीय व्यवस्था का दायरा और गहराई स्थिर नहीं थी।

बहुपक्षीय मानदंडों, संस्थानों और प्रक्रियाओं के मेजबान के साथ अमेरिकी अनुपालन को मिश्रित बैग के रूप में अधिक सटीक रूप से देखा जाता है – जैसा कि अधिकांश देशों के लिए है। वास्तविक रूप से, सभी राष्ट्र उनके लिए उपलब्ध बहुपक्षीय समूहों के मेनू से अपनी पसंद में चयनात्मक होते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका ने केवल अतिरिक्त जांच को आकर्षित किया, क्योंकि सबसे बड़ी शक्ति और सिस्टम लीडर के रूप में, आदेश का अस्तित्व उस पर निर्भर था।

उत्तर–औपनिवेशिक राज्य और एशियाई देशों में राष्ट्र–निर्माण के लिए दो महाशक्तियों के बजाय विकसित पश्चिमी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों की आवश्यकता थी। लेकिन ऐसे संबंधों की राजनीतिक कीमत भारी थी क्योंकि विकासशील देश शायद ही वैश्विक कूटनीतिक खेल में अपनी भागीदारी से बच सके।

निष्कर्ष

भौगोलिक कारणों के अलावा, इस परिप्रेक्ष्य ने युद्ध के बाद की अवधि में चीन के साथ भारत के संबंधों की विशेषता बताई। माओवादी चीन की अपनी राज्य निर्माण प्रक्रिया में विचारधारा की प्रधानता थी लेकिन उसने पिछली आधी सदी से बदलते अंतरराष्ट्रीय संबंधों का जवाब दिया था। भारत ने अपनी नीति को रणनीतिक जरूरतों और वैश्विक भूमिका के जवाब में डिजाइन किया था, जिसकी उसने खुद कल्पना की थी। एशियाई मामलों में महाशक्तियों की घुसपैठ ने इन दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधों में आम रणनीतिक चिंताओं और गलत धारणाओं को जन्म दिया। भारत की स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में भारत और चीन के बीच काफी अच्छे संबंध थे। लेकिन उनके रिश्ते की नाजुकता तब स्पष्ट हो गई जब उन्होंने एशियाई क्षेत्र और बाहर महाशक्तियों की भागीदारी के लिए अलग–अलग प्रतिक्रियाएँ दीं।

संदर्भ

- असलानली, आराज। क्या अमेरिका काकेशस में अपनी ताकत बढ़ा रहा है? यूरेशिया क्रिटिक, दिसंबर,

- डेनियल, डोनाल्ड सी., टैफ्ट, पैट्रिस और विहार्टा शेरोन। पीस ऑपरेशंस ट्रेंड्स, प्रोग्रेस एंड प्रॉस्पेक्ट्स। वाशिंगटन, डीसीरू जॉर्जटाउन यूनिवर्सिटी प्रेस,

- हैरिसन, इवान। शीत युद्ध के बाद की अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली। न्यूयॉर्क रूटलेज,

- हटिंगटन, शमूएल पी. सभ्यताओं का टकराव? विदेश मामले, वॉल्यूम। 72, नंबर 3,

- कनेट, रोजर ई. रूस री–इमर्जिंग ग्रेट पावर। बेसिंगस्टोकरू पालग्रेव मैकमिलन,

- महाजन, राहुल। नया धर्मयुद्ध आतंकवाद पर अमेरिका का युद्ध। न्यूयॉर्क मासिक समीक्षा प्रेस,

- सैंडर्स, मेरियट्टा ई. एलायंस पॉलिटिक्स इन यूनिपोलेरिटी। थीसिस (एमए)। जॉर्ज मेसन यूनिवर्सिटी, फेयरफैक्स, वीए,

- सेलिगसन, मिशेल ए. और पास–स्मिथ, जॉन टी. डेवलपमेंट एंड अंडरडेवलपमेंट द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ ग्लोबल इनइक्वलिटी। बोल्डर, सीओ लिन रेनर,